[Conference-Composition of Colours :December,2014] ISSN- 2350-0530
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v2.i3SE.2014.3558

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

वर्ण–सौन्दर्य द्वारा दर्शक से संवाद करती भारतीय कला

डॉ. अर्चना रानी,
विभागाध्यक्ष–ड्राइंग एवं पेण्टिंग विभाग,
रघुनाथ गर्ल्स (पीजी) कॉलिज, मेरठ (यू0पी0)
ई–मेलः drarchana.art@gmail.com

कला और सौन्दर्य–ये दो शब्द कला जगत में एक जैसे होते हुए भी बहुत विस्तृत हैं। स्थूल तौर पर हम कला और सौन्दर्य में कोई अन्तर नहीं कर पाते। सौन्दर्य एक मानसिक अवस्था है और वह देश–काल से मर्यादित है। इस सौन्दर्य रूपी वृक्ष की दो शाखायें हैं–एक प्रकृति तथा दूसरी कला। कलागत सौन्दर्य पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। पहली दृष्टि यह है जिसमें हम कलाकार को केन्द्र में रखकर विचार करते हैं अर्थात् कलाकार की कल्पना में किस प्रकार कोई कलाकृति आकार ग्रहण करती है और वह किस रूप में दर्शकों के सम्मुख प्रकट होती है। दूसरी दृष्टि में दर्शक को केन्द्र में रखा जाता है, अर्थात् कलाकृति को निरख दर्शक के मन में क्या प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है और उसके व्यक्तित्व अथवा सामाजिक जीवन में किस प्रकार कितनी मात्रा में परिवर्तन करती है। किसी भी कृति के रसास्वादन में वर्ण का विशेष महत्व है। वस्तुतः वर्ण स्पेस में प्रकाश की शृंखला है, अर्थात् प्रकाश का गुण है।[1] वर्णों द्वारा ही मानव–जीवन लय तथा रसमय होता है। वर्णों का सुन्दर योजन ही कृति को मनोरम रूप प्रदान करता है। भारतीय कला के छः अंगों में वर्ण भी कला के महत्वपूर्ण अंग के रूप में वर्णित है। 'शिल्परत्न', 'कादम्बरी', 'नाट्यशास्त्र' तथा 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' आदि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णों के प्रकार एवं महत्व का सविस्तार वर्णन है। वर्ण का स्रोत सूर्य है। जिस प्रकार सूर्य सभी ऊर्जाओं का स्रोत है उसी प्रकार वर्ण भी उसके प्रकाश से ही उत्पन्न होते हैं।[2] माघ मास में या वर्षा ऋतु में आकाश में जो इन्द्रधनुष दिखाई देता है, उसमें सात वर्ण होते हैं जो वर्ण दर्शक को सूर्य के प्रकाश के कारण ही दिखाई देते हैं।[3] अतः वर्ण का उत्पत्ति–स्रोत सूर्य का प्रकाश ही है। हमें भी अपने दैनिक जीवन में विभिन्न रंगों की जो आभा दिखाई देती है, उसका अस्तित्व प्रकाश द्वारा ही संभव है। एक बंद अंधेरे कमरे में रंगों का कोई अस्तित्व नहीं होता, क्योंकि अंधेरा अंधा होता है।

प्रत्येक कृति की निजी भाषा होती है कलाकार भावों को अभिव्यक्त करने के साथ–साथ नूतन सौन्दर्य की भाषा भी विकसित करता है और यह कार्य वह वर्ण के माध्यम से उत्पन्न करता है। वर्ण आज ही नहीं, बल्कि आदिकाल से कलाओं में सौन्दर्य के साथ–साथ भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का सशक्त माध्यम के रूप में विकसित हुआ है। लघु चित्रण, भित्ति चित्रण, लोककला आदि विभिन्न कलाओं में वर्णों का प्रयोग होता रहा है। आकार व रंग दोनों प्रकृति के अनंत रूपों में बहुत ही महत्वपूर्ण है। वर्ण में असीम ऊर्जा होती है। अगर हम देखे तो प्राचीन गुहावासियों से लेकर आधुनिक समय तक कलाकार ने वर्ण के महत्व को समझा तथा अभिव्यक्ति के लिए वर्णों का प्रयोग किया। रंगों के प्रतीकात्मक महत्व भी है इसीलिए वर्णों को चित्र में भरते समय उसके प्रतीकात्मक मूल्यों पर पूरा ध्यान रखा जाता है। कला के छः तत्वों में रंग सर्वाधित महत्वपूर्ण हैं।[4] आदिम युग से ही चित्रण परम्परा के प्रमाण मिलते रहे हैं। इन आदिम कलाकारों ने कला की कोई विशेष शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। उस समय आज की तरह न कोई कला विद्यालय थे, न कोई शिक्षण तकनीक और माध्यम। कलाकार अपनी सूझ–बूझ व कल्पना शक्ति के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करते थे। इन कलाकारों ने किसी विशेष रंग योजना या रंग भरने की किसी विशेष तकनीक का प्रयोग नहीं किया। आदिम चित्रों में गेरु, रामराज, काजल व खड़िया जैसे रंगों का सहज प्रयोग किया गया है।[5] यदि हम गुफा चित्रों के विषय में बात करें तो उस समय भित्ति चित्रण की परम्परा थी। चित्र दीवारों पर बनाये जाते थे तथा कलाकार अपनी कल्पना को रूप प्रदान करता हुआ इन रूपों में वर्णों के माध्यम से प्राण फूंकता था। अजन्ता के गुफा चित्रों की तकनीक फेस्को थी। कलाकार इस प्रविधि के माध्यम से भित्ति चित्रों को रंगते थे। इस प्रविधि में वर्ण चित्रतल के ऊपरी सतह का ही भाग बन जाता है। क्योंकि रंग चूने के पानी में मिलाकर सतह पर लगाये जाते हैं तथा उनकी घुटाई की जाती है।[6] इस प्रकार उस समय के कलाकार ने इस पद्धति के माध्यम से कल्पित रंगों को एक नवीन पहचान दिखाई। समय के साथ–साथ कला के स्वरूप में परिवर्तन आया तथा इस स्वरूप परिवर्तन के साथ–साथ रंगों का कलेवर भी खिल उठा। अजन्ता के भित्ती चित्र इसका प्रमाण हैं।

सत्य यह है कि रेखा–वर्ण से उपजा लालित्य इंसान को अपने मोह में बांध लेता है। यह ललित्य आकर्षण सम्प्रेषणीयता से अलग है। यह मोह बन्धन अजन्ता में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।यहाँ चित्रों में छिपी एक भाषा है, जो मात्र विचारों को सम्प्रेषित नहीं करती, वरन् रंग–रेखाओं के सौन्दर्य से दर्शक को मन हर लेती है। इन्हीं रंगों की भाषा ने फाह्यान युवानच्वांग जैसे चीनी यात्रियों के मन को जीता।[7]

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

चित्रकला के क्षेत्र में मध्ययुगीन स्थितियों का विशेष महत्व रहा है। मुगल एवं राजस्थानी चित्रशैलियों के साथ–साथ पहाड़ी शैली की अपनी एक विशिष्टता रही है। उपरोक्त तीनों क्षेत्रों के लघुचित्र शैलियों में जीवन, गति, संगीतमय, माधुर्यता प्रदान करने में वर्ण–संयोजना का विशेष योगदान रहा है। मुगल कालीन वर्ण–सौन्दर्य जहाँ राजसी ठाठ–बाट को दर्शाता है, वही राजस्थानीं एवं पहाड़ी प्रेम विषयक चित्रों में वर्णों का प्रयोग प्रेम को उत्तेजित करने में सफल रहा है। राजस्थानी कला में जहाँ चटकीले, प्रखर वर्णों का सौन्दर्य गुंजायमान रहा, वहीं पहाड़ी कला में कलाकारों पर संगीत, काव्य और सुहावनें दृश्यों का प्रभाव पड़ा, फलस्वरूप पहाड़ी वर्ण–योजना में कोमलता का समावेश हुआ। छाया–प्रकाश के माध्यम से कलाकृतियों के मुखमण्डलों में उभार लाने का कार्य प्रारंभ हो गया था।

राजस्थान मूलतः अपनी पारम्परिक लघुचित्र शैलियों के लिये मशहूर रहा है। यहाँ की कला न केवल भारत वरन् विश्व के कला परिदृश्य में छाई हुई है। पन्द्रहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी तक इस कला ने जयपुर, कोटा, बूंदी, मेवाड़, किशनगढ़, जोधपुर आदि अनेक केन्द्रों में विकास पाया। राजस्थान की मेवाड़ शैली में पृष्ठभूमि में एक ही रंग या विरोधी रंगों के आकारों को संयोजित किया गया है। प्रायः भवन गुम्बजदार श्वेत वर्ण के बने हैं। सपाट रंगों में गोलाई देने के लिये सुकामल छाया का प्रयोग है। लाल, केसरिया, पीला, सिन्दूर, काजल, रामरज, हिरोंजी, लाजवर्दी तथा हरे वर्ण को देशी पद्धति से बनाकर प्रयोग किये गये हैं। स्वर्ण एवं रजत वर्णों का भी बहुतायत से प्रयोग है। रंग विधान अजन्ता के समान कोमल न होकर चटकीला है। राजस्थान के समकालीन कलाकारों में पी0 एन0 चोयल, राम गोपाल विजयवर्गीय, सुरेश शर्मा, विद्यासागर उपाध्याय, राम जैसवाल, शैल चोयल, देवकी नन्दन, प्रभा शाह, रामेश्वर सिंह, द्वारका प्रसाद, सुमहेन्द्र तथा किरण मोन्द्रियॉ आदि ऐसे नाम हैं जो अपनी विशिष्ट रेखांकन एवं रंगाकन पद्धति के लिये देशभर में जाने जाते हैं।

भारत की पारम्परिक धरोहर को हम समृद्ध, देदीप्यमान, यशस्वी, उत्तम एवं महान जैसे शब्दों द्वारा वर्णित कर सकते हैं। इन धरोहरों में लोक एवं आदिवासी कलाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। लोक कलायें भारत के विभिन्न भागों में अपनी–अपनी निजस्वता लिये विद्यमान हैं। लोक कला के लिये मुख्य रूप से राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र एवं छत्तीसगढ़ महत्वपूर्ण राज्य हैं। प्रत्येक राज्य की लोक कला में वहाँ के जाति गुण के साथ–साथ सरलता, रंगीली तथा मुखरता विद्यमान है जो भारत की समृद्ध धरोहर का वर्णन करती होती है। लोक कलाओं में भी वर्णों का अपना महत्व है। लोक कलाकार सामान्य से दिखने वाले ऐसे चित्र उकेरते हैं कि दर्शक की दृष्टि हटती ही नहीं। लोक कला एवं काव्य तथा संगीत में स्वयं वही व्यक्ति कलाकार होता है और वही श्रोता–भोक्ता।[8] लोक कला मुख्य रूप से गृहस्थ जन, विशेष रूप से गृहिणियों की कला है। परम्परा से कहार या कोहार जाति इसके पेशेवर चित्रकला कर्मी रहे हैं। कोहार मिट्टी के बर्तन बनाने वाले आदिम कलाकार के वर्तमान वंशज हैं। मिट्टी के बर्तन बनाने, मूर्तियाँ बनाने के अतिरिक्त भित्ति चित्र लिखने में ये आज भी सिद्धहस्त हैं।[9] गृहिणी और कोहार का अपना कार्यक्षेत्र है। घर पर विभिन्न संस्कारों, सुअवसरों, पूजा आदि पर घर की महिलाएँ लोक कला पर घर आंगन को सजाती हैं, परन्तु विभिन्न मांगलिक अवसरों पर कोहार अपनी मुख्य भूमिका अदा करते हैं। इस कला में गृहिणी कलाकार प्राकृतिक पदार्थ जैसे रोली, चूना, खड़िया, गेरू, पीली मिट्टी, सिन्दूर, आटा आदि का प्रयोग कर विभिन्न लोक चित्रों का चित्रण करते हैं। परन्तु विशेषज्ञ होने के कारण कोहार कलाकारों ने अपने वर्ण स्वयं विकसित किए हैं, जो उनकी स्वयं की सूझ–बूझ का परिणाम है। इसमें पेवड़ी से पीला रंग, सिन्दूर से लाल और जोगिया, पत्ती व जरी से हरा, करखी से काला तथा चीनी खड़िया से सफेद रंग बनते हैं।

बिहार की मधुबनी कला अपनी सृजनात्मकता तथा सांस्कृतिक चेतना के बल पर सभी को आकर्षित करती रही है। इसका परम्परागत जीवनव्यापी स्वरूप कोहबर चित्र–रचना में प्राप्त होता है। इसे बनाने में ग्रामीण स्त्रियाँ स्थानीय वर्णों का प्रयोग करती हैं। ये चित्र गत्वर और संवेदनात्मक ऊर्जा से युक्त रहते हैं।[10] कायस्थ परिवारों में हल्के वर्णों का प्रयोग होता है। इनके यहाँ गेरु, हल्का भूरा, काला तथा लाल रंग प्रयोग किया जाता है। लम्बी पूरी दीवार पर आकृतियाँ उकेरी जाती हैं। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ चटकीले वर्णों लाल, नीला, पीला, हरे रंग का प्रयोग करती हैं। प्रायः आकृतियों की सीमा रेखा काले वर्ण की दुहरी रेखाओं द्वारा बनाई जाती है। चटकीली, सरल रंग–संयोजना में मधुबनी कला की महिला सृजेता का अपना कल्पना–लोक क्रियाशील रहता है। रंगों के सुन्दर तालमेल से यह कला विश्व भर को आस्वादन कराने में सक्षम रही है।

आधुनिक कलाकारों ने कला में विभिन्न वर्णों की मिश्रित तानों का प्रयोग कर चित्र की आकर्षण क्षमता में वृद्धि की है। आज कलाकार सभी बंधनों से मुक्त होकर आत्मभिव्यक्ति को महत्व देते हुए मन चाहे वर्णों का प्रयोग कर रहे हैं। अपनी कल्पना शक्ति के बल पर कलाकार ऐसे चित्रों की रचना कर रहे हैं जिनका आधुनिक कला जगत में कोई सानी नहीं है। आज कलाकार अपने मूड अथवा भाव के अनुसार वर्णों का चयन कर रहे हैं। चित्र में उत्तेजना प्रदर्शित करने के लिए वह लाल रंग के स्थान पर नीला, हरा अथवा अन्य वर्ण लगा रहे हैं। कलाकार व्यक्तिगत अनुभव को सर्वोपरि मानते हुए उदासी का वातावरण दर्शाने

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

के लिए लाल वर्ण भी लगा रहे हैं। उनके अनुसार वृक्षों का हरा होना आवश्यक नहीं, वह लाल भी हो सकते हैं। आज चित्रकार मूर्त व अमूर्त कलाकृतियों का चित्रण कर रहे हैं। इन चित्रों में वर्णों का अपना एक निश्चित महत्व है। तंत्र कला के प्रमुख कलकार गुलाम रसूल सन्तोष का मानना है कि ऊर्जा रंगों में प्रकट होती है। पंच तत्व बिन्दु पाँच वर्णों में प्रदर्शित होता है।[11] गुलाम रसूल सन्तोष तन्त्र कला में कार्य करते हैं। उन्होंने अपनी कलाकृतियों में वर्णों के माध्यम से विभिन्न रूपों की रचना की है जो दर्शक की तन्त्रिकाओं पर सीधा प्रभाव डालता है। उन्होंने वर्णों के प्रभाव को ध्यान में रखे बिना ही अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर चित्रों में विभिन्न वर्णों को स्थान दिया है। उन्होंने विभिन्न चित्रों में वृक्ष कमलपुष्प आदि को उनके प्राकृतिक वर्ण में न बनाकर नीला व जामुनी रंग का बनाकर अपनी कल्पनाशक्ति को प्रदर्शित किया है।

वर्तमान समय में सैय्यद हैदर रज़ा ने तंत्रिका चित्रकला संबंधी, जो भी प्रयोग किये हैं, वे मिश्रित अथवा व्यवहारिक अधिक हैं। हाँ, उनके चित्रों की वर्ण–योजना अत्यधिक आकर्षित हैं। परस्पर तथा विरोधी रंगों के सामंजस्य से बने उनके चित्रों से रंगों की अलौकिक आभा निकलती है जो दर्शक को निसर्ग की ओर ले जाती प्रतीत होती है। ज्यामितीय रूपकारों वाले रज़ा की कृतियों में एक अमूर्त सौन्दर्य, आध्यात्मिकता तथा अधूरी छटपटाहट है। शक्ति और ध्वनि के दूसरे चित्रकार गुलाम रसूल संतोष अपने चित्रों में शिव–शक्ति, पुरूष–प्रकृति, हिरोशिमा के एटम बम विस्फोट सभी को अपने चित्रों में गढ़ते रहे हैं। रंगों के विषय में उनका कथन है कि वह रियाज की बात है। निरन्तर अभ्यास के जरिये किसी हद तक रंगों और रंगतों पर अधिकार पाया जा सकता है।[12] उनका रंगों का प्रयोग खास तरह से है। वह रंग की परतों पर परतें चढ़ाते जाते हैं और इस प्रकार चित्र परिपक्व हो जाते हैं तथा चित्रों से एक आभा निकलने लगती है। लगता है रंग–पदार्थ (पिगमेण्ट) प्रकाश में बदल गये हैं। रंगों में प्रकाश का यह प्रयोग आध्यात्मिक लगने लगता है तथा चित्र में विलक्षण बना देता है।

समकालीन चित्रकार मनजीत बावा ने दो दशक से अपने काम से एक विशिष्ट पहचान बनाई है। प्रश्न उठता है कि क्या है इस विशिष्ट पहचान में? इसमें है उनकी रंग पद्धति एवं मुद्राएँ। मनजीत बाबा अपने चित्रों में कभी मोटे–मोटे रंग नहीं लगाते। उनके वर्ण तो सिल्क के बारीक कपड़े की परत जैसे हैं। वे प्रायः पारदर्शी हैं, बावजूद इसके उनके वर्णों में हमें, एक सघनता भी मिलती है। वे प्रायः विपरीत वर्णों को भी एक साथ रखते हैं–कुछ इस तरह कि उन रंगों का अस्तित्व अलग से भी बना रहता है और वे एक–दूसरे से संवाद भी कायम करते हैं। दरअसल मनजीत का रंग–व्यवहार उनकी सिल्क–स्क्रीन पद्धति में दक्षता से भी प्रभावित हैं।[13] यह उनकी कलाकृतियों की उल्लेखनीय बात है।

आकृति मूलक चित्रकार ए0 रामचन्द्रन की कला–यात्रा पर दृष्टि डाले तो उनकी कृतियाँ अपनी खास संगीतिक जादू से आकर्षित करती हैं। उनके चित्रों में सौन्दर्य परम्परा, भारतीयता अनुगूँज जादुई रंगों से सुनाई पड़ता है। उनके म्यूरल सदृश चित्रों की वर्ण–योजना संवादपरक है। प्रारंभ में उन्होंने जलरंगों का प्रयोग किया, बाद के अधिकांश चित्र तैल माध्यम में सृजित हैं। उनकी मानसरोवर शृंखला, अज्ञात की मिथकीय यात्रा, अन्ना और अमलताश, युवा दुल्हन, कूर्मावतार के साथ सविता, रामदेव, तूतीनामा तथा ध्यान चित्र शृंखला में म्यूरल चित्रों की प्राचीन रंगांकन परम्परा का विस्तार है। स्वयं को चित्रों में सूत्रधार की भाँति कभी मानव, देव, पशु, पक्षी के रूप में अंकित कर वह भारतीय कलाकारों में सबसे अलग है।[14]

सार रूप में, आज का कलाकार कहीं कोमल तूलिका संघातों, कहीं गाढ़े रंगों को 'स्पैटुला' से लगाकर, कहीं रंगों को बहा कर, तो कहीं एक साथ विविध माध्यमों को लगाकर 'मिक्स्ड मीडिया' के कार्य कर रहे हैं। वानआइक बन्धुओं द्वारा प्रयोग करते हुए जिन तैल रंगों का अविष्कार हुआ, आज वह एक सुदीर्घ परम्परा को पार कर कलाकार कार्य कर रहे हैं। इन रंगों द्वारा किये गये प्रत्येक प्रयोग की एप्रोच में अन्तर है। कहीं–कहीं इसे किंचित उष्ण मोम के साथ मिलाकर भी प्रयुक्त किया गया है जिसे 'एनकॉस्टिक' कहा गया, जिसमें शान्ति देव, जी0 आर0 सन्तोष आदि के प्रयोग विशेष सराहनीय हैं। बड़ौदा के भी कलाकारों ने ''एनाकॉस्टिक'' के क्षेत्र में विविध प्रयोग किए। रामकुमार ने बहुत से चित्रों में मोम तथा स्याही का प्रयोग किया है। धरातल को मोम से कवर करने के तत्पश्चात् तूलिका से रूपों को स्पष्ट किया। जौन मीनो ने प्रिन्ट्स पेपर, कोलाज तथा असेम्बलेज के माध्यम से नए–नए प्रयोग किए। मीरों, बाँश, आर्य आदि के फंतासी चित्र मात्र एक प्रयोग ही प्रस्तुत नहीं करते, वरन् कला जगत को एक नवीन शैली भी प्रदान करते हैं। रणवीर बिष्ठ ने तैल रंगों में चित्रांकन करते समय तारपीन का अधिक मात्रा में प्रयोग करके अपने चित्रों में पारदर्शक प्रभाव की दृष्टि की है।

सन्दर्भ–संकेत

1. *डॉ0 आर0 ए0 अग्रवाल – रूपप्रद कला का मूलाधार, मेरठ, लायल बुक डिपो, मेरठ।*
2. *डॉ0 लक्ष्मी श्रीवास्तव – कलानिनाद, इलाहाबाद : विभा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2010, पृष्ठ 106.*
3. *डॉ0 मोहन सिंह मावडी – भारतीय कला सौन्दर्य, पृष्ठ 97.*

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

4. राम विरंजन – समकालीन भारतीय कला, निर्मल बुक एजेंसी, कुरूक्षेत्र, प्रथम संस्करण, 2003, पृष्ठ 88.
5. डॉ0 आर0 ए0 अग्रवाल – भारतीय चित्रकला का विवेचन, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, प्रथम संस्करण, 2002, पृष्ठ 15.
6. वही, पृष्ठ 48.
7. शोध पत्रिका – कला संस्कृति में प्रयोगधार्मिता के नये आयाम, सम्पा0 – डॉ0 सविता नाग, मेरठ, 2004, पृष्ठ 20।
8. कला दीर्घा – दृश्य कला की छमाही पत्रिका, सम्पा0 – अवधेश मिश्र, अप्रैल 2006, वर्ष 6, अंक 12, पृष्ठ 44.
9. वही, पृष्ठ 58.
10. डॉ0 श्याम सुन्दर दुबे – लोक चित्रकला, परम्परा और रचना दृष्टि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2005, पृष्ठ 135.
11. कला दीर्घा, अप्रैल 2007, वर्ष 7, अंक 14, पृष्ठ 15.
12. समकालीन कला, सं0 13, 1989, पृष्ठ 30.
13. समकालीन कला, मई 1986, सं0 6, पृष्ठ 27.
14. क–कला सम्पदा एवं वैचारिकी, संयुक्तांक जुलाई–अक्टूबर 2009, वर्ष 6, अंक 4 एवं 5, नई दिल्ली, पृष्ठ 7.

चित्र–विथिका

एस0 एच0 रज़ा की कृति

मधुबनी चित्रकला

जी. आर. सन्तोष की कृति

ओमप्रकाश शर्मा की कृति